आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 6/अंक 2/जून 2026

Received: 23/05/2026; Accepted: 02/6/2026; Published: 28/06/2026

भ्रमरगीत परंपरा में सूरदास के भ्रमरगीत का स्थान

डॉ. दीपा देशपांडे

सहायक प्राध्यापिका

हिन्दी विभाग

सुराणा कॉलेज (स्वायत्त)

साउथ एण्ड रोड, बेंगलूरु

deepa.chandrala@gmail.com

डॉ. दीपा देशपांडे, भ्रमरगीत परंपरा में सूरदास के भ्रमरगीत का स्थान, आखर हिंदी पत्रिका, **खंड 6/अंक 2/जून 2026**,(242 -251)

This work is licensed under CC BY-NC 4.0

https://doi.org/10.5281/zenodo.21442322

सारांश :

भ्रमरगीत परंपरा हिन्दी साहित्य की एक महत्वपूर्ण काव्य-धारा है, जिसका मूल स्रोत श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध में निहित है। इस परंपरा में सूरदास का 'भ्रमरगीत' सर्वाधिक प्रभावशाली और श्रेष्ठ कृति के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत शोध-विषय में भ्रमरगीत की व्युत्पत्ति, विकास-परंपरा तथा विभिन्न कालों में उसके स्वरूप का विवेचन किया गया है। भक्तिकाल से आधुनिक काल तक अनेक कवियों-जैसे नंददास, तुलसीदास, भारतेंदु हरिश्चंद्र और मैथिलीशरण गुप्त-ने इस परंपरा को समृद्ध किया, किंतु भावात्मक गहनता, मनोवैज्ञानिक चित्रण, व्यंग्य-उपालंभ तथा विरह-वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से सूरदास का

'भ्रमरगीत' अनुपम सिद्ध होता है। इसमें निर्गुण ज्ञान पर सगुण भक्ति तथा प्रेम-मार्ग की विजय का सशक्त निरूपण हुआ है। भाषा की दृष्टि से भी सूरदासजी ने प्रसंगानुकूल काव्य-भाषा का प्रयोग किया है। हिन्दी साहित्य में सूरदास का 'भ्रमरगीत' इस परंपरा का सर्वोच्च शिखर माना जाता है।

बीज शब्द : भ्रमरगीत परंपरा, सूरदास, सगुण भक्ति, गोपियों का विरह, उद्धव–गोपी संवाद, कृष्ण भक्ति, काव्य-सौन्दर्य।

प्रस्तावना :

हिन्दी साहित्य में भ्रमरगीत परंपरा एक महत्वपूर्ण काव्य-विषय के रूप में विकसित हुई है, जिसकी मूल प्रेरणा श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के उद्धव-गोपी संवाद से प्राप्त होती है। इस प्रसंग में भ्रमर को प्रतीक बनाकर गोपियों की विरह-वेदना और प्रेमानुभूति का मार्मिक चित्रण किया गया है।

भक्तिकाल में सूरदास ने इस प्रसंग को अपने ग्रंथ 'सूरसागर' में अत्यंत प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया। उन्होंने सगुण भक्ति और प्रेम-मार्ग की श्रेष्ठता को स्थापित करते हुए भ्रमरगीत को साहित्यिक ऊँचाई प्रदान की। इस लेख में भ्रमरगीत परंपरा के विकास तथा सूरदास के 'भ्रमरगीत' की विशेषताओं का संक्षिप्त विवेचन किया गया है।

भ्रमरगीत का उद्भव

भ्रमरगीत की मूल पृष्ठभूमि **श्रीमद्भागवत महापुराण** के दशम स्कंध के ४७ वें अध्याय में भ्रमरगीत की प्रसंगोद्भावना की गई है। भागवत में उद्धव का व्यक्तित्व सर्वथा भिन्न है । श्रीकृष्ण जब मथुरा चले जाते हैं, तब ब्रज की गोपियाँ उनके वियोग में अत्यंत व्याकुल हो उठती हैं। उनकी इस विरह-वेदना को शांत करने और उन्हें ज्ञान तथा योग का उपदेश देने के उद्देश्य से श्रीकृष्ण अपने प्रिय मित्र उद्धव को ब्रज भेजते हैं । अपने माता-पिता, तथा वियोग में तप्त गोपियों को अपना संदेश देने के लिए कहते हैं । इस संदर्भ में भागवत का यह श्लोक उल्लेखनीय है,

"गच्छोद्धव व्रजं सौम्य पित्रोर्नः प्रीतिमावह।

गोपीनां मद्वियोगेन मत्सन्देशैर्विमोचय॥ "॥ १.

ब्रज पहुँचकर उद्धव पहले नंद और यशोदा को सांत्वना देते हैं और तत्पश्चात गोपियों से संवाद करते हैं। भागवत में 'भ्रमरगीत' का प्रसंग बस इतने ही संक्षेप में है, किन्तु काव्य के लिए उसका उपयोग करना सूर की प्रतिभा की अपनी विशेषता है और फिर भ्रमरगीत से सूर ने अपने एक विशिष्ट उद्देश्य की सिद्धि भी की है। भ्रमरगीत में उद्धव का पराजय, ज्ञानमार्ग का पराजय और सगुणोपासना का विजय दर्शाया गया है।

भ्रमरगीत का अर्थ एवं स्वरूप

भ्रमरगीत की उत्पत्ति में 'भ्रमर' एक अत्यंत महत्वपूर्ण काव्य-प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है। भ्रमर अपनी चंचलता और लोभी वृत्ति के कारण उपयुक्त प्रतीक माना गया है। भारतीय काव्य परंपरा में भी कालिदास, जयदेव, विद्यापति आदि कवियों ने भ्रमर की इसी प्रवृत्ति का उल्लेख किया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि यह प्रतीक पूर्व से ही प्रचलित रहा है।

हिन्दी साहित्य में यही प्रसंग 'भ्रमरगीत' के रूप में विकसित हुआ, जो गीतिकाव्य की एक महत्वपूर्ण धारा है। 'भ्रमरगीत' शब्द '**भ्रमर**' और '**गीत**' के योग से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ -'**भंवरे का गीत**' है। इस काव्य का संबंध कृष्ण, गोपियों और उद्धव से है, जहाँ गोपियाँ भ्रमर को संबोधित कर अपने मनोभाव व्यक्त करती हैं, इसलिए इस प्रसंग को 'भ्रमरगीत' कहा जाता है। इसमें भ्रमर, उद्धव और कृष्ण के बीच साम्य स्थापित किया गया है। उद्धव को भ्रमर का प्रतीक माना गया है। इसी प्रकार कृष्ण का श्याम वर्ण, पीतांबर धारण करना, मुरली की मधुर ध्वनि से सबको आकर्षित करना तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना, यें सभी गुण भ्रमर से साम्य स्थापित करते हैं। इस प्रकार भ्रमर यहाँ कृष्ण और उद्धव दोनों का प्रतीक बन जाता है।

भ्रमरगीत परंपरा का विकास (कालानुसार विभाजन)

भ्रमरगीत परंपरा हिन्दी साहित्य की एक महत्वपूर्ण काव्य-धारा है, इस परंपरा का विकास विभिन्न कालों में भिन्न-भिन्न रूपों में हुआ, जिसे मुख्यतः भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल में विभाजित करके समझा जा सकता है।

(अ) भक्तिकाल

भक्तिकाल में भ्रमरगीत परंपरा का सर्वाधिक विकास हुआ और इसे सशक्त आधार प्राप्त हुआ। इस परंपरा को चरम उत्कर्ष पर पहुँचाने का श्रेय **सूरदास** को जाता है। उनके 'सूरसागर' में वर्णित भ्रमरगीत हिन्दी साहित्य में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सूरदास ने तीन भ्रमरगीतों की रचना की, जिनमें ज्ञान-वैराग्य, गोपियों का उपालंभ, तथा सगुण भक्ति की निर्गुण पर विजय जैसे गूढ़ दार्शनिक और भावात्मक पक्षों का सुंदर समन्वय मिलता है।

सूरदास के पश्चात **परमानंददास** ने गोपी–उद्धव संवाद को सरल और भावपूर्ण शैली में तथा **नंददास** ने गोपियों को तर्कशील और बुद्धिमती रूप में, **कुंभनदास** ने ब्रजलीला और गोपियों के विरह चित्रण, सगुण–निर्गुण विवाद तथा **तुलसीदास** ने 'कृष्णगीतावली' में इस प्रसंग को मर्यादित, सरल और भक्तिपरक रूप में प्रस्तुत किया है ।

(ब) रीतिकाल

रीतिकाल में भ्रमरगीत परंपरा का स्वरूप परिवर्तित हो गया। इस काल के कवि मतिराम, देव, घनानंद और पद्माकर ने गोपियों के प्रेम, विरह, तन्मयता तथा श्रृंगारिक भावों का प्रभावशाली चित्रण किया। परिणामस्वरूप इस काल में भ्रमरगीत परंपरा का केंद्र भक्ति की अपेक्षा अलंकारिकता और श्रृंगार-सौन्दर्य अधिक बन गया।

(क) आधुनिक काल

आधुनिक काल में भ्रमरगीत परंपरा ने नया स्वरूप ग्रहण किया, जिसमें भक्ति के साथ सामाजिक, राष्ट्रीय और मानवीय चेतना का समावेश हुआ। '**भारतेंदु हरिश्चंद्र**' और '**प्रेमधन**' ने इस परंपरा को आगे बढ़ाते हुए ज्ञान पर भक्ति का विजय को दर्शाया है।

अयोध्यासिंह उपाध्याय **'हरिऔध'** के 'प्रियप्रवास' में लोककल्याण और विश्वप्रेम की भावना व्यक्त हुई, जबकि जगन्नाथदास '**रत्नाकर**' के 'उद्धव-शतक' में प्राचीन और नवीन तत्वों का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। इस प्रकार आधुनिक काल में भ्रमरगीत परंपरा भक्ति के साथ सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना से भी समृद्ध हो गई।

सूरदास के भ्रमरगीत का स्थान:

सूरदास के भ्रमरगीत की वैचारिक पृष्ठभूमि

भ्रमरगीत के रचना का मूल कारण, सूर की मानसिक्ता और तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक परिवेश पर दृष्टिपात करते हुए ,आचार्य विश्वानाथ प्रसाद मिश्र का कथन है कि,

"ज्ञान की कोरी वचनावली और योग की थोथी साधनावली का यदि साधारण लोगों में विशेष प्रचार हो तो अव्यवस्था फैलने लगती है। निर्गुण पंथ ईश्वर की सर्वव्यापकता, भेदभाव की शून्यता, सब मतों की एकता आदि को लेकर बढ़ा, जिस पर चलकर अपढ़ जनता ज्ञान की अनगढ़ बातों और योग के टेढ़े-मेढ़े अभ्यास को ही सब कुछ मान बैठी तथा दंभ, अहंकार आदि दुर्वृत्तियों से उलझने लगी। ज्ञान का ककहरा भी न जानने वाले उसके पारंगत पंडितों से मुँहजोरी करने लगे। सूर आदि सगुणोपासक कवियों ने इस विषाक्त वातावरण के दुष्परिणाम को पूरी तरह से समझ लिया था; अतः प्रेम और भक्ति की सरसता तथा ज्ञान और योग की नीरसता के लाभालाभ का प्रतिपादन और तात्त्विक सूक्ष्म विवेचन इन रचनाकारों का स्पृहणीय एवं अभीष्ट विषय बन गया। फलतः सूरादि सगुणोपासक कवियों ने निर्गुण की अपेक्षा सगुण मार्ग का अपेक्षाकृत अधिक गुण-गान किया तथा माधुर्य और सौन्दर्य की मूर्ति श्रीकृष्ण के भूले हुए स्वरूप के प्रति इन्होंने जन-मानस को एक बार पुनः आकृष्ट करने का स्तुत्य प्रयत्न किया।**" २.**

इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि सूरदास साधारण जनता को भक्ति के सरल मार्ग से अवगत कराया और तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति के अनुकूल उन्होंने सगुण भक्ति, प्रेम और माधुर्य को अधिक महत्त्व दिया।

परम्परा का संवर्धन एवं कथा का काव्यात्मक विस्तार

भ्रमरगीत परम्परा में सूरदास का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण और सर्वोच्च माना जाता है। उन्होंने इस परम्परा को न केवल समृद्ध किया, बल्कि उसे भाव, कला और काव्यात्मक विस्तार प्रदान किया। उनका 'भ्रमरगीत' व्यवस्थित एवं श्रृंखलाबद्ध है, क्योंकि आरंभ में कृष्ण की गोकुल संबंधी चिंता, उद्धव के अहंकार को दूर करने का विचार, उद्धव की ब्रज यात्रा, उनका उपदेश तथा अंत में गोपियों द्वारा उस उपदेश का खंडन—ये सभी प्रसंग क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत हुए हैं। इस प्रकार सूरदास ने संक्षिप्त कथा को विस्तृत और सुसंगठित काव्य रूप देकर उसे अधिक प्रभावशाली बना दिया है।

निर्गुण–सगुण भक्ति का प्रतिपादन एवं गोपियों की विजय

सूरदास ने अपने भ्रमरगीत में ज्ञान मार्ग की अपेक्षा प्रेम मार्ग को अधिक महत्त्व दिया है। उद्धव कृष्ण की सर्वव्यापकता और निर्गुण ब्रह्म, योग साधना के बारे में उपदेश देते हैं । किंतु गोपियाँ उद्धव के निर्गुण ज्ञान का उपहास करती हैं और अपने सगुण प्रेम-भक्ति की श्रेष्ठता को सिद्ध करती हैं। इस प्रकार अंततः गोपियों को निर्गुण मार्ग फिका लगता है,

" हे अलि कहा जोग में नीकौ ।
तजि रस रीति नंदनंदन की, सिखवत निर्गुण फिको ।
देखत सुनत नहिं कचू स्रवननि, ज्योति-ज्योति कर ध्यावत "। ३.

सूरदास ने निर्गुण भक्ति, योगियों की जटिल साधना और परंपराओं का उल्लेख करते हुए सगुण भक्ति को अधिक सहज और ग्राह्य सिद्ध किया है। कवि ने इस प्रसंग को अधिक सामयिक और प्रभावपूर्ण रूप में प्रस्तुत किया है।

मनोवैज्ञानिक चित्रण और काव्य-सौन्दर्य

सूरदास के भ्रमरगीत में मानव हृदय की सूक्ष्मतम भावनाओं का अत्यंत सजीव और मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है। गोपियों की विरह-वेदना, प्रेम, रोष और उपालंभ को उन्होंने स्वाभाविक रूप से व्यक्त किया है। जहाँ भागवत में गोपियाँ शांत रहती हैं, वहीं सूरदास ने उन्हें मुखर, भावुक और तर्कपूर्ण बनाया है-उद्धव मुश्किल से एक बात कह पाते हैं, जबकि गोपियाँ उन्हें अनेक प्रकार से उत्तर देती हैं। उनके काव्य में व्यंग्य-

विनोद, हास-परिहास और उपालंभ का सुंदर समन्वय मिलता है, जिससे काव्य अत्यंत मार्मिक और सजीव बन जाता है। उनके प्रत्येक पद में मार्मिकता और सजीवता का ऐसा समन्वय है, जो अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट प्रतीत होता है।

"अखियाँ हरि दरसन की भूखी।
कैसे रहति रूप रस राँची, ये बतियां सुनि रूखी॥" ४

भ्रमरगीत में गोपियों की विरह वेदना और उद्धव के ज्ञान के अहंकार के बीच गहरा मनोवैज्ञानिक द्वंद्व है। यहाँ गोपियों की मानसिक स्थिति का वर्णन है।

सूरदास की काव्य-कला : भाव पक्ष

'सूर' हिन्दी साहित्याकाश के 'सूर' माने जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि सूर का काव्य सम्पूर्ण काव्य-गुणों से परिपूर्ण है। उनके काव्य में निम्नलिखित तत्त्व प्रमुख रूप से विद्यमान हैं।

विनय

सूर में एक भक्तमनोवृत्ति के कवि थे, इसलिए सूर के विनय के पद इस दृष्टि से उत्कृष्ट हैं, क्योंकि सूर के इन पदों में उनकी दीनता, अकिंचनता आदि भावनाएँ बड़े निखरे रूप में हमारे समक्ष आती हैं। सूरदास अपने को कुटिल ,पापी मानते हैं और ईश्वर को लोगों को तारनेवाले देव के रूप में स्वीकारते हैं ।

"मो सम कौन कुटिल कल कामी
तुम सौं कहा छिपी करुनामय सबके अंतरजामी॥"५

इस प्रकार के विनय के पदों से स्पष्ट हो जाता है कि सूर इस संसार से अत्यन्त विरक्त हो गये थे और उद्धार के लिए उन्हें केवल भगवान की कृपा का ही भरोसा रह गया था। वे भगवान के समक्ष अपनी पूरी दुर्बलताओं सहित आत्म-समर्पण करते हैं ।

बाल-वर्णन—सूर का बाल-वर्णन हिन्दी में अद्वितीय माना जाता है। उनकी इस विशेषता के समक्ष हिन्दी का बड़े से बड़ा कवि भी नहीं टिक पाता। सूर ने वात्सल्य के दोनों पक्षों—माता-पिता तथा बालकों—का मार्मिक वर्णन किया है। वे माँ के हृदय के प्रेमोद्गार को भी जानते हैं और माँ-बाप के प्रति बच्चों की कोमल भावनाओं से भी वे परिचित हैं। दोनों का सूक्ष्म निरीक्षण उन्होंने किया है। इसी साधना और महानता के बल पर वे बाल-वर्णन के हिन्दी में सर्वश्रेष्ठ कवि बन गये हैं।

"मैया मैं नाहिं माखन खायौ ।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटाओ ।
देखि तुही छींके पर भाजन उँचे धरि लटकायौ ।
तुही निरखि नान्हें कर अपने मैं कैसे धरि पायो ।

मुख दधि पोंछ कहत नंद नंदन देना पीठि दुरायो ।" ६

बालक कृष्ण की चालाकि माता को बहलाने का प्रयत्न करता जो इन प्रस्तुत पंक्तियों के माध्यम से ज्ञात होता है।

मुरली— कृष्ण युवा होते हैं। वे तो वैसे ही सम्पूर्ण ब्रज में आकर्षण का केन्द्र हैं, कृष्ण मुरली वादन में सिद्धहस्त हैं। ऐसी मुरली वादन करते हैं कि उसकी ध्वनि सुनकर अचल, चलने लगें और चलने वाले जीव स्थिर हो जाएँ। मुरली का प्रभाव बड़ा व्यापक है। कृष्ण को भी मुरली बहुत अच्छी लगती है। एक क्षण के लिए भी वे उसे अपने आप से अलग नहीं करते। गोपियों को यह बात बिल्कुल पसन्द नहीं आती कि मुरली कृष्ण के समय पर इस प्रकार अधिकार कर ले। कुछ उनका भी तो अधिकार कृष्ण के समय पर होना चाहिए।

"माई री मुरली अति गर्व काहू बदति नाहिं आजु।

हरि कौ मुख कमल देख पायौ सुख राजु॥" ७

कृष्ण गोपियों के भी तो हैं, और फिर मुरली है भी बड़ी घमण्डिनी, कृष्ण का प्रेम प्राप्त कर गर्व के मारे फूली नहीं समाती। किसी को कुछ समझती ही नहीं, गोपियाँ उस मुरली से भी ईर्ष्या करती है , इस संदर्भ में कवि ने मुरली का मानवीकरण किया है।

वियोग का वर्णन—गोपियाँ और कृष्ण के प्रेम की जड़ें अत्यन्त गहरी हैं। वे श्रीकृष्ण के प्रति अपने अनन्य प्रेम एवं अपनी विरह व्यथा की गंभीर व्यंजना करती है। तभी तो उद्धव जैसे ज्ञानी के लाख प्रयत्न करने पर भी उनका पूर्ण विकसित प्रेम-वृक्ष हिलता तक नहीं है। सूरदास जी ने प्रकृति के प्रतीकों के माध्यम से गोपियों के विरह -वेदना का चित्रण किया है ।

"निसिदिन बरसत नैन हमारे ।

सदा रहति पावस ऋतु हम पै जब ते स्याम सिधारे "। ८

सूरदास ने यह दर्शाया है कि 'भ्रमर गीत' का उद्देश चाहे उद्धव को ब्रज भेजकर उनके ज्ञान गर्व को समाप्त करना हो, किंतु यह वियोग की भावना सूरदास जी ने कृष्ण में भी व्यक्त किया है । कृष्ण भी गोपिकाएँ, ब्रज, प्रकृति आदि के प्रति अपनी वियोग व्यथा को उद्धव के समक्ष इस प्रकार व्यक्त करते हैं,

"हरि गोकुल की प्रीती चलाई ।

सुनहु उपँगसुत मोहि न बिसरत ब्रजवासी सुखदायी॥

यह चित होत जाउँ मैं, अबही यहाँ नहीं मन लागत।

गोप सुग्वल गाय वन चारत अति दुःख पायो त्यागत॥"९

इन पंक्तियों के माध्यम से सूरदासजी यह जताना चाहते हैं कि केवल भक्त ही नहीं बल्कि भगवान भी भक्त के बिना अधुरे हैं। इन पंक्तियों में से यह प्रतीत होता है कि, कृष्ण न केवल गोपियों के प्रेम में वियोग संतप्त होने के अतिरिक्त ब्रज के प्रति भी उनके वियोग में व्यथित होने की बात स्वीकार करते हैं।

अपने काव्य में सूर ने गोपियों के प्रेम पर ही अधिक ध्यान दिया है। उन्होंने कृष्ण को उतना प्रेम-पीड़ित नहीं दिखाया, जितना गोपियों को हो सकता है कि भारतीय दर्शन के यही अधिक अनुकूल हो, जहाँ जीवात्मा परमात्मा के विरह में अधिक व्याकुल रहती है। साहित्य-शास्त्र के शब्दों में कह सकते हैं कि गोपियों का प्रेम नायिकाभाव का प्रेम है।

सूरदास की काव्य-कला : कला पक्ष

सूर की भाषा 'ब्रज' भाषा है जो हिन्दी का ही विशिष्ट रूप है। सूरदास जी ने सर्वप्रथम ब्रज भाषा को परिष्कृत रूप में अपने काव्यों में प्रयोग किया है । सूरदास जी ने बोल-चाल के शब्दों के साथ-साथ ,व्यंग्य, विरह ,गोपियों के मानसिक दशा का वर्णन, उपालंभ, भक्ति, वात्सल्य आदि संदर्भों के अनुसार भाषा का प्रयोग किया है । सूरदास जी के अलंकारों के निर्वाह में भी उनकी भाषा का चमत्कार दिखाई देता है। उन्होंने उपमा, रूपक, अनुप्रास, यमक आदि अलंकारों का प्रयोग किया है । कई संदर्भों में सूरदास जी ने मुहावरे युक्त भाषा का भी प्रयोग किया है । सूरदास जी ने श्रृंगार और वात्सल्य रसों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है। इस प्रकार सूरदास के काव्य में भाव पक्ष अर कला पक्ष दोनों एक समान पुष्ट है ।

निष्कर्ष: सूरदास का 'भ्रमरगीत' हिन्दी साहित्य में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उन्होंने श्रीमद्भागवत के संक्षिप्त प्रसंग को अपनी मौलिक प्रतिभा, भावुकता और काव्य-कला से अत्यंत मार्मिक एवं प्रभावशाली बना दिया। उनके काव्य में सगुण भक्ति, प्रेम, विरह, वात्सल्य और श्रृंगार का सुंदर समन्वय मिलता है। गोपियों की विरह-वेदना, उद्धव के ज्ञान-अहंकार का खंडन तथा प्रेम-भक्ति की विजय का चित्रण अत्यंत सजीव और मनोवैज्ञानिक है।

सूरदास ने ब्रज-संस्कृति और लोकजीवन का भी स्वाभाविक चित्रण किया है। उनकी भाषा की सरलता, भावों की गहराई और काव्य की सरसता उन्हें हिन्दी साहित्य का अद्वितीय कवि सिद्ध करती है। इसलिए सूरदास का 'भ्रमरगीत' भ्रमरगीत परंपरा की सर्वोत्तम रचना माना जाता है। भ्रमरगीत काव्य की दृष्टि से अत्यंत व्यापक और प्रभावशाली है। इसमें मुख्यतः विप्रलंभ (विरह) की प्रधानता है, जहाँ विरह-दग्ध

गोपियों की विविध भावनाओं प्रेम, उपालंभ, व्यंग्य और समर्पण की स्वाभाविक अभिव्यक्ति मिलती है। इस काव्य में ज्ञान पर प्रेम तथा योग पर भक्ति की विजय का प्रतिपादन किया गया है, जिससे भक्तिमार्ग की सर्वोच्चता सिद्ध होती है।

पाद -टिप्पणियाँ :

१. डॉ. किशोरीलाल-सूरदास और भ्रमरगीत सार- **पृ.सं**-9 (श्रीमद्भागवत महापुराण के दशम स्कंध (10वें स्कंध के 46 वें अध्याय का तीसरा (3) श्लोक)

२. डॉ. किशोरीलाल- सूर और उनका भ्रमर गीतसार-**पृ.सं** -12

३. डॉ. नरेंद्र देव शास्त्री- भ्रमरगीत सार की टीका-पृ.सं- 30

४. आचार्य रामचंद्र शुक्ल- भ्रमरगीत-सार -पृष्ठ संख्या **78**

५. डॉ. विजय प्रकाश मिश्र- हिन्दी के प्रतिनिधि कवि- पृ.स.-36

६. डॉ. गंगा सहाय 'प्रेमी'-सूरदास कृत भ्रमरगीत -सार - पृ.सं -38

७. डॉ. नरेंद्र देव शास्त्री- भ्रमरगीत सार की टीका -पृ.सं.-39

८. डॉ. किशोरीलाल-सूरदास और भ्रमर गीत सार- पृ.सं-28

९. डॉ. गंगा सहाय 'प्रेमी'-सूरदास कृत भ्रमरगीत -सार -पृ.सं-77

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. डॉ. शिवकुमार शर्मा-(2006) हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ- नई दिल्ली-अशोक प्रकाशन
2. डॉ. नरेन्द्रदेव शास्त्री तथा डॉ. राजेन्द्र शर्मा-भ्रमरगीत-सार की टीका- (विवेचन और व्याख्या)- आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर
3. सं. सुदर्शन चोपड़ा-(2004 प्रथम संस्करण)-सूरदास- परिचय तथा रचनाएँ-नई दिल्ली- हिन्द पॉकेट बुक्स
4. डॉ. श्यामलाकांत वर्मा (2007)-कवि समीक्षा- वाराणसी- संजय बुक सेंटर
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल-(संस्करण 2008 के अनुसार) भ्रमरगीत-सार- लोकभारती प्रकाशन- इलाहाबाद
6. डॉ. किशोरी लाल-(1993) सूरदास और भ्रमरगीत सार-इलाहाबाद – अभिव्यक्त प्रकाशन
7. सरला शुक्ल-(1953 प्रथम संस्करण) हिन्दी साहित्य में भ्रमरगीत की परंपरा- लखनऊ विश्वविद्यालय-हिन्दी साहित्य समाज

8. डॉ. रामस्वरूप आर्य आर्य, डॉ. गिरीराज सरण अग्रवाल-(1974 में सूरदास की पांच सौवीं जयंती के उपलक्ष्य में हुआ था) सूर साहित्य संदर्भ-बिजनौर-हरि गंगा प्रकाशन
9. जयकिशन प्रसाद खंडेवाल-(2019) महाकवि सूरदास- दिल्ली- प्रकाशक: स्वाति एकेडमी,
10. द्वारिका प्रसाद सक्सेना- हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधी कवि-आगरा- प्रकाशक -विनोद पुस्तक मंदिर
11. डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी-सूरदास कृत भ्रमर गीत सार-(आचार्य रामचन्द्र शुल्क के क्रमानुसार)-लखनऊ-प्रकाशन केंन्द्र
12. डॉ. गंगासहाय प्रेमी- आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा संपादित, सूरदास कृत *भ्रमरगीत सार (संपूर्ण),* आगरा- प्रकाशक-हरिश प्रकाशन मंदिर
13. डॉ. विजय प्रकाश मिश्र-(द्वितीय संस्करण 2011) *हिंदी के प्रतिनिधि कवि*- कानपुर- विद्या प्रकाशन
14. श्रीप्रकाश शुक्ल-(2001) *साठोत्तरी हिंदी कविता में लोक सौंदर्य* -इलाहाबाद- लोकभारती प्रकाशन
15. आचार्य रामचंद्र शुक्ल-सूरदास- वारणासी- नागरीप्रचारिणी सभा
16. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी (1956)-सूर साहित्य-बम्बई- हिन्दी रत्नाकर लिमिटेड
17. द्वारका दास परीख, प्रभु दयाल मीतल (1962)-सूर निर्णय-मथुरा- सहित्य संस्थान
18. डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, श्री राकेश –हमारे कवि एवं लेखक-लखनऊ-प्रकाशन केंन्द्र

****